नोबेल विजेता ऐन कर्सन

ISSN 2394-1723
मूल्य : 50 रुपये

वागर्थ

वर्ष 32 अंक 372 नवंबर–2026

साहित्य के युवा रुझान : संभावनाएं और संकट

सविता सिंह गरिमा श्रीवास्तव अदनान कफिल दरवेश
अनुज लुगुन प्रभात रंजन अरुण देव
प्रस्तुति : संजय जायसवाल

कहानियां

दिव्या विजय विद्याभूषण
कृष्ण चंद्र सिंह अशोक शाह



भारतीय भाषा परिषद

ISSN : 2394-1723

वागर्थ

भारतीय भाषा परिषद की मासिक पत्रिका

वर्ष 32, अंक 372, नवंबर 2026

इस अंक में

भविष्य के वर्तमान से सवाल : **संपादकीय** 5

कहानियां

यवनिका पात : **दिव्या विजय** 12

नाम से पहचान तक : **विद्याभूषण** 32

सिगरेट के टुकड़े : **कृष्ण चंद्र सिंह** 37

कुदाल : **अशोक शाह** 42

सुल्तान और डाकू (लोककथा)

(अंग्रेजी से अनुवाद : **सुभाष चंद्र कुशवाहा**) 48

कविताएं

दिव्या श्री/नाज सिंह/महेश आलोक/बल्ली सिंह 'चीमा'/लाल्टू/गोविंद सेन/सरोज कुमार वर्मा/राजहंस सेठ/कविता कोठारी 51

असमिया कविताएं/बांग्ला कविताएं/बोडो कविताएं

(*अनुवादक* : **दिनकर कुमार, देवेंद्र कुमार देवेश, बिजित गोरा रामसियारी**) 65

परिचर्चा

साहित्य के युवा रुझान : संभावनाएं और संकट :

सविता सिंह/गरिमा श्रीवास्तव/अदनान कफील दरवेश अनुज लुगुन/प्रभात रंजन/अरुण देव

(प्रस्तुति : **संजय जायसवाल**) 65

स्मरण

'देहाती दुनिया' उपन्यास के सौ वर्ष

: **गोपेश्वर सिंह** 102

विश्वदृष्टि

कुछ कविताएं : **ऐन कार्सन**

(अनुवाद एवं प्रस्तुति : **उपमा ऋचा**) 107

संपादक

शंभुनाथ

प्रबंध संपादक

प्रदीप चोपड़ा

प्रकाशक

डॉ. कुसुम खेमानी

संपादन सहयोग

अंक सज्जा

सुशील कान्ति

संपादकीय विभाग

36 ए, शेक्सपियर सरणी

कोलकाता–700017

vagarth.hindi@gmail.com

7449503734

(दिन 12 बजे से संध्या 6 बजे)

समीक्षा संवाद

बदलाव की उम्मीद जगाती कविताएं : **राकेश कुमार सिंह**
(पवन कुमार सिंह, सुमित पी.वी. और नेहा नरूका की पुस्तकें) 111

सोशल मीडिया 116

विविध

पाठक संसद/सांस्कृतिक गतिविधियां/किताबें 120

लघुकथा

दस्तखत : **देवेंद्रराज सुथार** 36

देशांतर

ऐन कार्सन (कनाडियन)

कविताओं में रेखांकन :
नेट से साभार

वागर्थ सदस्यता और बिक्री संपर्क

एक प्रति : 50/-
सामान्य वार्षिक सदस्यता (डाक व्यय सहित) : 550 रुपये
वार्षिक सदस्यता (रजिस्टर्ड डाक) 550+1008 = 1558 रुपये
आजीवन : 10,000 रुपये/**(साधारण डाक)** विदेश : **वार्षिक** : 80 डॉलर
भारतीय भाषा परिषद के नाम से चेक या ड्राफ्ट भेजें

एजेंसियों और सदस्यों द्वारा चेक से भुगतान Bharatiya Bhasha Parishad के नाम या Neft द्वारा : Kotak Mahindra Bank, Branch : Loudon Street, A/c no. 8111974982, IFSC Code KKBK0006590 पर भुगतान करें।
भुगतान के बाद एस एम एस या व्हट्सअप कर दें 8910269814 : **मीनाक्षी दत्ता**
जानकारी : कार्यालय के दिन दोपहर 12 बजे से संध्या 6 बजे तक
समय पर भुगतान करने वाली एजेंसियों को ही हम भविष्य में पत्रिका भेज पाते हैं।



आप क्यू आर कोड स्कैन करके भी **भारतीय भाषा परिषद** के नाम भुगतान कर सकते हैं। भुगतान करने के बाद मोबाइल नंबर सहित संपूर्ण विवरण भेज दें।

● प्रकाशित रचनाओं से संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
© सर्वाधिकार सुरक्षित
● वागर्थ से संबंधित सभी विवाद कोलकाता न्यायालय के अधीन होगा।

● वेबसाइट : **www.bharatiyabhashaparishad.org**

वागर्थ प्रबंध प्रभार **: मीनाक्षी दत्ता**
वितरण तथा अन्य कार्य **: बैद्यनाथ कामती, खेत्राबासी बारीक, संतोष सिंह, प्रदीप नायक, प्रेम नायक**



संपादकीय

भविष्य के वर्तमान से सवाल

नई सदी में पहले की तरह कोई साहित्यिक आंदोलन नजर नहीं आता। युवा लेखकों में भी ऐसा कोई इरादा नहीं दिखता। 20वीं सदी में साहित्यिक आंदोलन नजर आते थे। कुछ लेखक ही सही वे इकट्ठे होकर कोई घोषणापत्र लेकर खड़े हो जाते थे या मिलकर कोई पत्रिका शुरू कर देते थे। वे साहित्य की दिशा पर सार्वजनिक बहस करते थे। वर्तमान सदी में चीजें बिखरी हैं और व्यक्तिकेंद्रिक अधिक हुई हैं। आज के लेखक आसानी से संगठित नहीं होते और साहित्य पर बहस नहीं करते।

पिछली सदी में आधुनिकता, क्रांति और मुक्ति के बड़े आख्यान त्यागकर हाशिए की आवाजें सामने आईं। खासकर स्त्री, दलित और आदिवासी साहित्य प्रमुखता पाने लगा। इनके पास भी अब कुछ नया कहने के लिए नहीं है, जबकि स्थितियां काफी बदल चुकी हैं। इसलिए अब नौजवान रचनाकारों के हाथ में है कि वे साहित्य को कैसे चर्वित चर्वण से आगे ले जाएं।

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपना सारा साहित्य 35 साल की जीवन अवधि में लिखा जब वे युवा थे। प्रेमचंद का 'सोजेवतन' जब जब्त हुआ, वे 28 साल के थे। निराला ने 'राम की शक्ति पूजा' और 'कुकुरमुत्ता' की रचना 40 साल की आयु के भीतर कर ली। अज्ञेय ने 32 साल की आयु में 'तारसप्तक' का संपादन किया। मुक्तिबोध को कुल जमा 47 साल की आयु मिली। निर्मल वर्मा ने 27 साल की उम्र में 'परिंदे' कहानी लिखी। हम 1960 के दशक के आधुनिकतावादी साहित्यिक दौर को जानते हैं, सभी आंदोलनकारी युवा थे।

एक तरह से 20वीं सदी का पूरा साहित्य आंदोलनात्मक साहित्य है। लेखक एक-दूसरे के साथ खड़े होते थे। वे बताते थे कि साहित्य ऐसा होना

चाहिए। 21वीं सदी में साहित्य बहुकेंद्रिक से बढ़कर व्यक्तिकेंद्रिक हुआ है। हर लेखक अनुभव की केवल अपनी दुनिया लेकर उपस्थित है।

जब दुनिया रोज विखंडित हो रही है

फिर भी मुख्य समस्या यह नहीं है कि कोई साहित्यिक आंदोलन नहीं है या बिखराव है। मुख्य समस्या है कि विशिष्टताओं के साथ एक साझा साहित्यिक बोध कैसे निर्मित हो, क्योंकि 20वीं सदी के मॉडल टूट चुके हैं। अब नई स्थितियां हैं। इसके बावजूद 21 वीं सदी में लेखकों की दुनिया छोटे प्रतिरोधों और पहचानों की राजनीति में विभक्त है। साहित्य में 'विखंडित मानवीय संवेदना' ज्यादा दिख रही है, जबकि साझे साहित्यिक आंदोलन के लिए साझी मानवीय संवेदना की जरूरत है। सवाल है- क्या भिन्नता की राजनीति, बाजार अर्थव्यवस्था और डिजिटल संस्कृति के युग में साझी मानवीय संवेदना का कोई चेहरा हो सकता है?

विश्व, भारत देश या मनुष्य की समस्याओं को किसी एक ही पहचान, एक ही जगह खड़ा होकर नहीं समझा जा सकता। स्थिति यह है कि आर्थिक आधुनिकीकरण जितना तेज है, व्यक्ति का अकेलापन ही नहीं उसके जीवन की अनिश्चितता भी उतनी अधिक बढ़ गई है। किसी की आधुनिकता केवल पितृसत्ता से टकराती है, किसी की केवल जाति व्यवस्था से तो किसी की तरह-तरह से निर्मित 'पराये' लोगों से। हर विखंडित मानवीय संवेदना एक घायल चिड़िया है जो वस्तुतः अपने ही आकाश में विस्थापित है। भौतिक चमक-दमक के नीचे लोगों को सामान्यतः यही दिखता है कि उनकी दुनिया टूट रही है।

इस देश में ही नहीं, विश्व में कही भी आज कोई नया साहित्यिक आंदोलन नहीं है। इसका एक बड़ा कारण है, यह दुनिया रोज टूट रही है। कभी व्यवस्थागत अराजकता की बेला में, 20 वीं सदी में एक शरणस्थल 'शब्द' था। आज हमारी भाषा भी राजनीतिक और बाजारवादी तहस-नहस की शिकार है।

लेखक जब इतिहास से शब्द में लौट रहे थे

आज के जीवन का सबसे बड़ा विरोधाभास है सामान्यतः 'एडवांस्ड टेक्नोलॉजी और बैकवर्ड आइडियोलॉजी' के साथ जीना। अधिकांश लोग तकनीक के मामले में विकसित हैं, जबकि विचारों के मामले में पिछड़े रहने की होड़ है। भारतीय दिमाग में एक पुराना अंधेरा है जिसकी भोर आ-आकर लौट गई। इस अंधेरे में उत्थानशील आधुनिकताएं ही नहीं उच्च परंपराएं भी गुम हैं।

1960 के दौर का क्रुद्ध युवा उस दिमागी अंधेरे को देख पा रहा था जहां ऐंठी और सिकुड़ी चीजें थीं। यह वह दौर था जब 'सिस्टम' के विरुद्ध युवाओं का गुस्सा पहली बार मुखर हुआ था। वे पतित हो रही आधुनिक संस्थाओं के विरुद्ध बोल रहे थे। एंटी-पोएट्री, एंटी-आर्ट, एब्सर्ड आदि की बातें करते थे और एलीटवर्गीय सांस्कृतिक आभिजात्य को चिढ़ाते थे। उनके लेखन में अश्लीलता कामुकता का उत्सव न होकर वस्तुतः उस दौर के बौद्धिक-नैतिक पाखंडों के प्रति विद्रोह थी।

अकसर देखा गया है कि तर्क तथ्यों के आधार पर न बनकर समझौतों, षडयंत्रों या सुख-सुविधाओं के अधीन बनते हैं। तर्क गठित करते वक्त छोटे स्वार्थों को ज्यादा सामने रखा जाता है और निष्कर्ष निकाले जाते हैं। झूठ को भी तर्कसंगत बना दिया जाता है। इसका एक लक्ष्य तात्कालिक हितों को पूरा करने के लिए समावेशी बुद्धिपरकता को बर्खास्त करना है। फिर भिन्नता के खेल 'साझा जीवन-साझी संस्कृति' को असंभव बना देते हैं। जनजीवन और साहित्य दोनों की क्षति यह होती है कि असुविधाजनक सचाइयों से कन्नी काटी जाती है, जबकि महान साहित्य वह

दिखाता है जो हम देखना नहीं चाहते!

1960-70 के दशकों में दो-चार साधन संपन्न जगहों पर ही नहीं, सैकड़ों जगहों पर साहित्यिक और बौद्धिक गहमागहमी थी। साहित्य की प्रतिष्ठा थी, तीखी बहसें थीं। उस दौर में इतिहास में दबी चीखें महसूस की जाने लगी थीं, व्यवस्था की सड़न दिख रही थी। वह एक बड़े मोहभंग का दौर था जबकि आज मोहांधता ने जकड़ रखा है।

ऐसे दौर में जब अपने ही जीवन संसार और इतिहास से मनुष्य का विलगाव बढ़ता जा रहा था, उच्च विचार अपना अर्थ खो रहे थे और दिशाहीनता थी, रचनाकार के लिए 'शब्द' ही उसके अस्तित्व का घर था और उसकी पहचान भी था। 'शब्द' यथार्थ का प्रतिपक्ष नहीं था, बस वह यथार्थ को या किसी 'प्रचलित' या 'प्रचारित' को अपने ऊपर हावी होने से रोकता था। 'शब्द' स्वतंत्रता के लिए था। वह रचनाकार या हर बौद्धिक प्राणी को 'सिस्टम' की आंधियों में उधियाने से बचाता था। लेखक इतिहास से शब्द में लौट रहे थे। आधुनिकता के नए मोड़ पर खुद 'शब्द' साहित्य का एक महत्वपूर्ण विषय बन गया था, जैसा कि प्राचीन काल में, लगता है कि कुछ ऐसी ही स्थितियों में शब्द को 'परम ब्रह्म' कहा गया होगा!

उसी दौर में अज्ञेय और मुक्तिबोध जैसे लेखक ढहती हुई आधुनिकता को वैयक्तिक स्तर पर ढहने से रोकने के लिए साहित्यिक-सांस्कृतिक स्तर पर काम कर रहे थे। वे 'इर्रैशनल' चीजों से दूर थे। अज्ञेय आत्मान्वेषण, वैयक्तिक स्वतंत्रता और मानवीय गरिमा पर जोर दे रहे थे तो मुक्तिबोध आत्मसंघर्ष, पुनर्गठन और स्थितियों को बदलने पर। उस दौर में भी नगरीकरण लोगों को भीड़ में और उनकी आवाज को शोर में बदल रहा था। 'मास कल्चर' छा रहा था। उस युग में नई कविता, नई कहानी के प्रायः सभी लोग आधुनिकता के पूंजीवादी सूर्यग्रहण का अपनी-अपनी तरह से प्रतिवाद कर रहे थे। हर क्षेत्र में साझे आंदोलन थे।

हम इंटरनेट को लें, आज लेखक की समस्या यह नहीं है कि वह इसका इस्तेमाल करता है। उसके सामने चुनौती यह है कि इंटरनेट उसके चिंतन-मनन, यथार्थ के अनुभव और सामाजिक सद्भाव को कैसे कम से कम नियंत्रित करे और उसका आत्मविवेक अधिक बोले।

निश्चय ही युवा लेखकों की समस्याओं का निदान उन्हें खुद करना है। युग बदला है। युवा की एक ऐसी 'कैटेगरी' सामने आई है जो सामुदायिक चिह्नों को छोड़े बिना स्त्रियों, दलितों-पिछड़ों, आदिवासियों, किसानों, विद्यार्थियों, छोटे-मझले व्यापारियों, बेरोजगारों सबको जोड़ सकती है। यह एक अनोखी घटना है।

इस जमाने में सब लोगों को कुछ आम समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है, वे लेखक हों या न हों। इन दिनों 'प्रचार' की आंधी से व्यक्ति वस्तुतः इतना भी स्वतंत्र नहीं है कि वह स्पष्ट कह सके- मेरा यह मत है! एक भ्रांति-जाल है जिसमें हर व्यक्ति और कई बार लेखक भी इस तरह सोचने लगता है कि किस रंग की सत्ता-व्यवस्था उसके जीवन को अधिक सुरक्षा दे सकती है। सोचने के स्थान में आया यह एक बड़ा बदलाव है जो इस विविधतापूर्ण देश में प्रतिरोध को संकुचित और कमजोर कर देता है। यह बड़ी समस्याओं के प्रति गंभीरता की कमी दिखाता है। कहना न होगा कि इस दशा में देश के लिए छोटे स्वार्थों से ऊपर उठकर एक उदार राष्ट्रीय दृष्टि की जरूरत बढ़ जाती है।

मानवता की शक्ति सत्यों को जोड़ने में है

वैश्वीकरण के दौर में उत्थानशील आधुनिकता ही नहीं, उच्च परंपराएं भी सांस्कृतिक गत्यवरोध की शिकार हुईं, जब आधुनिकीकरण का तकनीकी क्रांतियों के नए संसार में प्रवेश हुआ। महापुरुष

जोकर बना दिए गए, जोकर महापुरुष! जिस तरह आर्थिक उदारीकरण समाज में उदारता न ला सका, तकनीकी क्रांतियों वाला आधुनिकीकरण समाज में आधुनिक सोच विकसित नहीं कर पाया। इसके विपरीत, भारत के नागरिक निर्बुद्धिपरक चीजों और 'भिन्नता' की विचारधाराओं में फंसते गए। समाज प्रतिद्वंद्वी समूहों में विभाजित होता गया और आज हम मानो एक-दूसरे के शत्रु बनकर किसी रणभूमि में खड़े हैं।

हम जब 'खंडित मानवीय संवेदना' की बात कर रहे हैं, बीते युगों की सहृदय बौद्धिकता की याद आ सकती है। हमने नागार्जुन, केदारनाथ सिंह जैसे लेखकों को बिना किसी भेदभाव, यहां तक कि उम्र के फर्क को भी मिटाकर युवा लेखकों से मिलने और एक महापरिवार-सा अनुभव करते देखा है। वे आत्म-महिमाबोध से भरे लोग न थे। वे 'दूरियों' को ध्वस्त करते थे। दूरियां कई तरह की हो सकती हैं- स्थानों और संस्कृतियों की दूरी, भिन्न समय की दूरी, मनुष्य और मनुष्य की दूरी और अपने भीतर के 'मनुष्य' से दूरी। ऐसी दूरियां तभी मिटती हैं जब व्यक्ति में सहृदय बौद्धिकता और संवादप्रियता हो।

हम कुछ भी क्यों पढ़ते हैं? हम यह जानने के लिए पढ़ते हैं कि हमारा एक बड़ा संसार है और हम अकेले नहीं हैं। सभ्यता ने जबसे पुस्तकें पढ़ने की संस्कृति से मोबाइल की रील-मीम-झूठे प्रचार की संस्कृति में छलांग लगाई है, व्यक्ति की दुनिया छोटी होती गई है। वह स्क्रीन-विश्व तक सीमित है। बहुत से वैचारिक संघर्ष स्क्रीन तक सीमित हैं, जबकि इतिहास के हाथ से उसकी जमीन खिसकती जा रही है।

हमारा युग अति-बौद्धिकता से पीड़ित है। इसने स्मृति, संवेदना और कल्पना को कठोर अवधारणाओं से जकड़ लिया है। अति-बौद्धिकता और कूपमंडूकता के बीच सूत भर का अंतर होता है। अति-बौद्धिकता 'भिन्नता' की जनक है, जबकि सहृदय बौद्धिकता भिन्नताओं के बीच संबंध की खोज करती है। अति-बौद्धिकता बुद्धि को दीवार बना देती है, जबकि सहृदय बौद्धिकता बुद्धि को पुल बनाती है। अति-बौद्धिकता भिन्नता को अंतिम सत्य घोषित करती है, जबकि सहृदय बौद्धिकता 'भिन्नता' में छिपी एकता ढूंढ़ती है।

गद्य के समक्ष
डिजिटल दृश्य संस्कृति की चुनौती

करीब दो सौ साल पहले गद्य का युग शुरू हुआ था। आधुनिक युग को गद्य का युग भी कहा गया है। गद्य के साथ एक दूसरी तरह की भाषा सामने आई जो तर्क करती थी, असहमति को जगह देती थी। गद्य में आम आदमी बहस कर सकता है। प्रिंट टेक्नोलॉजी के साथ गद्य की प्रतिष्ठा का अर्थ है साधारण लोगों के हाथ में ज्ञान की क्षमता पहुंचना। कई नई विधाएं जन्मीं- समाचार, निबंध, कहानी, उपन्यास, आलोचना आदि। इतिहास और समाजविज्ञान जैसे नए विषय जन्मे। नाटक विकसित हुआ। गद्य का अभ्युदय रूढ़ियों से विद्रोह और बौद्धिक स्वतंत्रता के उद्घोष के रूप में हुआ। वह केवल एक विधा नहीं था, वह सभ्यता का नया मस्तिष्क था।

आज गद्य को सबसे बड़ी चुनौती डिजिटल दृश्य संस्कृति से मिल रही है जहां तर्क की जगह रूढ़ियों और मनोरंजक झूठ हैं, विस्तृत विश्लेषण की जगह 20-30 सेकेंड का दृश्य-विस्फोट है। डिजिटल दृश्य संस्कृति में गद्य की तरह तर्क, प्रमाण और व्याख्या के लिए जगह नहीं है। उसमें 'समझने' की जगह 'देखने' पर जोर है। उसका लक्ष्य ज्ञान को दृश्यता के संसार में सीमित कर देना है। अब जो दृश्यता के बाहर है, वह दुनिया के बाहर है! उच्च शिक्षित लोगों की भी अब लेख या उपन्यास पढ़ने में कोई रुचि नहीं है, समाजविज्ञान या चिंतन की किताबें दूर की बात हैं। शिक्षित व्यक्ति भी डिजिटल दृश्य संस्कृति के